चौदहवाँ अध्याय
पंचमहाभूतों पर अधिकार

श्री साई महाराज ने कभी किसी को कोई आसन, प्राणायाम या मंत्र-जाप करने का उपदेश नहीं दिया। वे भक्तों को जो उपदेश दिया करते थे, वह अत्यन्त सीधा-सादा तथा आडम्बरहीन होता था, और भक्त लोग सरलता से उसे आचरण में ला सकते थे। श्री साई सदैव आग्रहपूर्वक अपने भक्तों से कहा करते थे-'' अपने अहंकार को त्याग दो। अपनी इच्छानुसार किसी भी देवी-देवता की आराधना करो और मुझमें अटल विश्वास रखो। यदि आप यह सिधा-सादा और सुलभ मार्ग प्रत्यक्ष अपने आचरण में ला सकेंगे तो समझ लीजिये, आपका कार्य पूर्णत: सफल हो गया। हरेक व्यक्ति को सुख-दु:ख भोगना ही है; किन्तु दु:ख की तीव्रता कम करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सदैव अपने दैनिक व्यापार करने के साथ-साथ अल्प काल के लिए भी क्यों न हो, परमात्मा का नाम-स्मरण करना चाहिये। यज्ञ-अग्नि को आहुति देना, वेद-मंत्रो का जयघोष आदि उपासनाएँ और धार्मिक विधि-विधान केवल कर्मठ ब्राम्हणों के लिए ही है। अन्य लोग यदि इन कृत्यों से दूर न रहे तो यह उनका पागलपन होगा।''

मनुष्य का मन इतना चंचल होता है कि एक क्षण के लिए भी वह स्थिर होकर नही रह सकता। नींद में भी मनुष्य का मन अनेक उलझनों में फँसा रहता है। ऐसे चंचल मन कि निर्द्वन्द्व प्रवृतियों पर अंकुश लगाने की शिक्षा केवल सद्गुरू कृपा से ही प्राप्त होती है। श्री साई महाराज भक्त से अपनी प्रथम भेंट के समय ही यह कार्य इतनी सरलता से पूरा करते थे कि स्वयं भक्त को भी इसकी कोई कल्पना नहीं होती थी। भक्त के मन से भय का अस्तित्त्व समूल नष्ट कर उस अध्यात्मिक ज्ञान की ऊँची भूमिका में ले जाने का लगभग अशक्य कार्य श्री साई महाराज बडी ही सरलता से संपादित करते थे। श्री साई महाराज ने संसार त्याग कर संन्यास-दीक्षा लेने का आग्रह कभी नहीं किया। इसके विपरीत वे आग्रहपूर्वक सदैव यही कहते थे कि हरेक व्यक्ति को चाहिये कि वह प्रपंच मे रहकर भी अपने नित्य व्यवहार को सदैव भी भाँति सँभालते हूए अपनी मानसिक उन्नति करने का प्रयत्न करे।

ठाट-बाट से रहने वाले लोगों से श्री साई महाराज घृणा करते थे। सादे रहन-सहन की वे सदा प्रशंसा करते थे। वे स्वयं एक बोरी के टुकडे पर बैठा करते थे और सोने के लिए टाट के टुकडे का उपयोग करते थे। अंत समय तक श्री साई महाराज एक पुरनी ईट का गर्दन के नीचे तकिये की तरह उपयोग करते रहे थे। वे अपने भक्तों का उचित सम्मान करते थे और हरेक भक्त को उसकी इच्छानुसार ही सेवा-चाकरी करने का अवसर देते थे। कुछ भक्त पंखे से हवा करते थे। कुछ भक्त मिलकर भजन और गीत गाते थे। पूजा करते समय कुछ भक्त उनके हाथ-पैर धोते थे तो कुछ भक्त उन्हे गंध-पुष्प,चंदन, इत्र आदि सुगन्धित वस्तू अर्पित करते थे। पूना- बम्बई की ओर के भकत अनेक प्रकार के उत्तम मिष्ठान और पकवान प्रसाद के लिए ले आते थे। कुछ अन्य भक्त, जिन्हे सदैव श्री बाबा का सान्निध्य प्राप्त रहता था। वे उन्हें चिलम, पान आदि वस्तुएँ अर्पण करते थे कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी भक्त को श्री बाबा की कोई भी वस्तू अर्पित करने के पूर्ण स्वतंत्रता

थी।

एक बार तात्यासाहेब नूलकर के साथ आये हुए डॉ. पंडित नामक सज्जन ने श्री बाबा के एक भक्त, श्री दादाभट्ट जी की पूजा की सामग्री में से चंदन निकाल कर हाथ में लिया और श्री बाबा के भव्य ललाट पर तीन समांन्तर रेखाएँ खींचकर एक त्रिपुण्ड बनाया। इस पर श्री बाबा को रूष्ट न देखकर सब भक्त लोग आश्चर्य में पड गये, क्योंकि श्री साई महाराज किसी को भी अपने मस्तक पर चंदन का टीका लगाने की अनुमति नही देते थे। संध्या के समय दादाभट्ट जी ने सहजस्वभाव से श्री बाबा से प्रश्न किया- ''बाबा, आपने डॉ. पंडित को मस्तक पर चंदन का टीका लगाने की अनुमति कैसे दी?''

श्री बाबा ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया-''अरे, उस डॉक्टर ने मुझे अपना गुरू मान लिया। धोपेकर के रघुनाथ महाराज, जो काका पुराणिक के नाम से विख्यात है, इसके गुरू है और यह डॉक्टर इसी प्रकार उन्हें चंदन का टिका लगाया करता है।'' कुछ समय पश्चात् दादाभट्टजी उठे और डॉक्टर पंडित से मिलकर उनसे उनके गुरू के विषय में पूछा। डॉक्टर साहब ने अपने गुरू का नाम वही बतलाया, जो श्री बाबा ने बतलाया था और चंदन लगाने की उनकी पद्धति भी वही थी, जो श्री साई महाराज के मस्तक पर चंदन लगाते समय उन्होंने अपनाई थी। श्री बाबा का दिव्य एवं अलौकिक सामर्थ्य देख दादाभट्टजी तो विस्मय-विमूढ रह गए।

परंतु इस प्रकार अपनी इच्छानुसार आचरण करने की स्वतंत्रता हर एक भक्त को सदैव नही मिलती थी। कुछ अवसरों पर तो भक्तों का अनुभव इसके विपरीत था। श्री बाबा एकाएक क्रुद्ध हो जाया करते थे, अपशब्दों की बौछार करते थे, पूजा की सामग्री धडा-धड इधर-उधर फेंक देते थे और एक भूत-बाधा से पीडित मनुष्य की भाँति भक्तों को मारने के लिए भी दौड पडते थे। ऐसे समय उनका सारा शरीर भयानक रीति से काँप उठता था और

आँखो से आग बरसती थी। पंरतु ऐसे समय भी वे अंत:करण से पूर्णत: सचेत और ममता से ओत-प्रोत रहते थे; क्योंकि दो-तीन मिनिट के बाद ही वे पुन: पूर्णत: स्वस्थ चित्त हो जाते थे और अत्यन्त शान्त, स्नेहयुक्त भाव से भक्त को अपने निकट बुलाकर कहते थे-''मै क्रुद्ध हुआ था क्या? देखो, तुम बुरा न मानना। माँ भी अपने बच्चे से कभी-कभी रूष्ट होती है। समुद्र कैसा भी रूद्र रूप धारण करे, वह नदी को अपने से मिलने से नही रोकता। मेरा क्रोध, संताप, सब कुछ भक्त के शुभ, कल्याण के लिए ही होता है।''

शिरडी में आने वाले सभी लोगों को श्री साई महाराज का दर्शन करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। पर उसमें से सभी लोगों को श्री बाबा का शिष्य कहलाने का अधिकार प्राप्त न था। वहाँ आये हुए हर एक व्यक्ति का हृदय श्री बाबा एक रत्नपारखी की भाँति अनेक प्रकार से परख लिया करते थे और उनकी इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही कोई मनुष्य उनके निकट आ सकता था।

एक बार कल्याण से हाजी सिद्दीक फालके नामक एक वृद्ध मुसलमान मक्का-मदीने की यात्रा कर श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी आया। कुरान शरीफ का पाठ करते हुए वह आठ-दस महिने शिरडी रहा। परंतु श्री बाबा ने उसे अपने पास तक नही फटकने दिया। एक दिन भी बाबा ने उसे द्वारकामाई मे पैर नही रखने दिया। श्री साई महाराज की इस अवकृपा का अनुभव कर हाजी को दु:ख हुआ। अन्य भक्तों के समझाने-बुझाने पर वह दृढता से वैसे ही बाहर बैठा रहा। शंकर को प्रसन्न करने के लिए जैसे पहले नंदी की आराधना करनी पडती है। वैसे ही हाजी ने श्री बाबा के परमप्रिय भक्त शामा (माधवराव) की सहायता लेने का प्रयत्न किया.और वह सफल भी हुआ। शामा ने श्री बाबा से स्पष्ट प्रश्न किया,''बाबा, आपका दर्शन करने के लिए किसी पर कोई बंधन नही होता। फिर आप उस गरीब वृद्ध हाजी को अपने निकट क्यों नही आने देते?''

इस पर श्री बाबा ने उत्तर दिया-''शामा, अभी तो तुच बच्चे हो।

फकीर जब आज्ञा नही देता तो मै क्या करूँ? उसकी आज्ञा के बिना कोई भी यहाँ आनेका साहस नही कर सकता। अब तुम विनती कर रहे हो तो मैं प्रयत्न कर देखता हूँ।''

इसके पश्चात् ''तुम मेरे साथ गहरी खाई में आ सकते हो क्या, मुझे चालीस हजार रूपये दक्षिणा के रूप में देने के लिए तैयार हो?'' आदि अनेक प्रकार के विचित्र प्रश्न पूछकर श्री बाबा ने हाजी की भली भाँति परीक्षा ली और अंत में उसे द्वारकामाई में आने की अनुमति दे दी। आगे उस हाजी पर श्री बाबा की पूर्ण कृपा रही। श्री बाबा ने समय-समय पर धन से भी उसकी सहायता की। श्री साई अपने पास आये हुए भक्त की पूर्ण परीक्षा लेकर ही उस आश्रय देते थै और तब एक बार वे किसी भक्त को अपनाते अथवा आसरा देते थे तो अंत तक वे उस पर मातृ-प्रेम की वर्षा करते थे।

गाँव के गँवार ओर छल-प्रपंच से विहीन भोले लोगों से उन्हे बहुत प्यार था। जब गाँव के निवासियों पर कोई समष्टि संकट आ पडता था तो वे श्री बाबा का सहारा लेते थे। वर्षा के दिनों में एक बार शिरडी मे अचानक घनघोर घटा छा गई। मेघ गरजने लगे। चारों दिशाओं में अंधकार छा गया। भयानक वर्षा होने लगी। इस भय से कि सारा शिरडी गाँव जलमग्न हो जायेगा, पशु-पक्षी और झोपडियाँ में रहने वाले गरीब किसान बडी आशा के साथ द्वारकामाई की ओर दौडे। इतनी छोटी द्वारकामाई सभी लोगो को आश्रय कैसे दे सकती थी ? किंतु आकाश को सीने का अलोकिक सामर्थ्य भी साई महाराज में विद्यमान था। उनकी भुजाओं में पंचमहाभूतो पर भी निजी अधिकार जमाने का सामर्थ्य था। इसलिए द्वारकामाई से उठ कर वे बाहर आए और आकाश की ओर देखते हुए मेघ के समान ही गम्भीर आवाज में गरजे, ''ठहरो, अपना यह नग्न-नृत्य बंद करो और शान्त हो जाओ।'' केवल दो ही मिनिट में प्रलंयकारी वर्षा बंद हो गई और सर्वत्र शांति का साम्राज्य छा गया। श्री साई महाराज ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की।

एक बार सब भक्त लोग द्वारकामाई में बैठे आनंदपूर्वक वार्तालाप कर रहे थे कि एकाएक धूनी में ज्वालाएँ भडक उठी। अग्नि की भयानक लपटें शनैः शनैः ऊँची उठकर द्वारकामाई के छप्पर तक पहुँच चुकी थी। सारी लकडियाँ जल उठेंगी और द्वारकामाई भस्म हो जायेगी, इस आशंका से वहाँ एकत्रित भक्त लोगों में हाहाकार मच गया। श्री साई महाराज समाधि से जागृतावस्था में आए और सचेत होते ही उन्होंनें भी भयानक कांड देख अपने हाथ लकडी का डंडा जोर से स्तम्भपर दे मारा और चिल्लाये, ''खरबरदार, नीचे उतरो। शांत हो जाओ।'' मानो वे क्रुद्ध हुए प्रत्यक्ष अग्निनारायण को ही लक्ष्य कर कह रहे हों। आश्चर्य की बात यह हुई की जो अग्नि अकस्मात् भडक उठी थी, उसकी भयानक ज्वालाएँ धीरे-धीरे ठंडी होती गई और थोडे ही समय बाद बिल्कुल शांत हो गई।

साधु-संतो का कार्य विविध प्रकार का होता है। वे अपने पराये की भावना से दूर रहते है। पवित्र, शुद्ध अंतःकरण के लोग और पापी, स्वार्थी, दुष्ट प्रवत्ति के लोग उनके लिए एक समान होते है। अगस्त्य मुनिके सदृश इस भवसागरके समस्त पापों को सोख लेने के लिए ही उनका अवतार होता है। जैसे सूर्य के तेज से अंधकार दूर होता है। वैसे ही साधु-संत भक्तों के पाप समूल नष्ट कर देते है। श्री साई महाराज का अपने भक्तों पर इसी प्रकार सदैव वरद हस्त रहता था। जब कभी श्री बाबा प्रसन्न मुद्रा में होते थे, तब अपने भक्तों को अत्यन्त संक्षिप्त, किंतू सरल सारगर्भित भाषा में गूढ तत्त्व ज्ञान की बात सुगमता से समझा देते थे। एक बार श्री बाबा बोल उठे-''मै फकीर बना फिरता हूँ। मेरा घर-बार नही। मेरे बाल-बच्चे नही है। संसार की सभी वस्तुओं का त्याग कर मैने यह फकीरी वेश लिया है। फिर भी एक रोग की भाँति यह माया मुझसे चिपकी बैठी है। मैं उसे झिडकाने का बार-बार प्रयत्न करता हूँ। श्रीकृष्ण की इस माया ने ब्रम्हदेव को भी नहीं छोडा, फिर आप जैसे संसार मे उलझे हुए भक्तों को अपने चारों ओर फैले हुए मायाजाल

को तोडने क लिए कितना परिश्रम करना पडता होगा, इसकी मुझे यथार्थ कल्पना है। मैं आपको दोष नही दे रहा हूँ। केवल उचित मार्ग दिखा रहा हूँ। उस दयाधन परमात्मा की भक्ति करो। भक्ति मार्ग ही अत्यन्त सुलभ मार्ग है, इसी मार्ग द्वारा सबसे निचले स्तर पर स्थित मनुष्य की भी धीरे-धीरे आध्यात्मिक उन्नति होती है। जो भक्त लोग पूर्व जन्म के पुण्यो के फलस्वरूप पहले ही आध्यात्मिक दृष्टीकोन से जरा ऊपर की सीढी पर चढे हुए दिखाई देते है, वे यदि केवल 'साई साई 'नाम स्मरण ही करें तो मै स्वयं अपने बल पर उन्हें सहज ही सात समुद्र पार और विश्व के ऊँकार स्वरूप की ओर ले जाऊँगा। इस सम्बन्ध में मन मे पूर्ण विश्वास रखो। मुझे आपकी पूजा की आवश्यकता नही। आपके अंत:करण में पवित्र एवं दृढ भक्ति उत्पन्न होते ही मै आपका उद्धार करूँगा।''

इस संसार में पूर्णत: सुखी कोई नही है। नांदेड शहर में रहने वाले एक प्रसिद्ध लखपति रतनजी शापुरी वाडिया कि परिस्थिति कुछ विलक्षण थी। अपार धन-सम्पति और ऐशोआराम होने के बावजूद रतनजी सुखी नही थे। संतति का अभाव होने के कारण वे सदा दु:खी ओर उदास रहते थे। दासगणू जी के वे भक्त थे। उनके कहने पर श्री साई महाराज के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए रतनजी शिरडी पहूँचे। रतनजीके लाये हुए फल और मेवा-मिष्टान्न स्वीकार कर श्री बाबा ने उनसे केवल पाँच रूपये दक्षिणा माँगी। जब रतनजी ने पाँच रूपये देने के लिए हाथ बढाया तो श्री बाबा बोलें-''अरे, इनमे से तीन रूपये चौदह आने मुझे पहले ही मिल चुके है। बाकी पैसे जो बचते है, बस वही दक्षिणा मे दे दो। तेरा कार्य सफल हुआ। परमात्मा तेरी मनोकामना पूरी करेगा।''

रतनजी प्रसन्नता से अपने गाँव लौटे और दासगणू जी से उन्होने तीन रूपये चौदह आने के सम्बन्ध में श्री बाबा के उद्‌गारों का रहस्य पूछा। दासगणू जी भी असमंजस मे पड गये। श्री बाबा के दर्शनों के लिए पहले कभी भी न

आये हुए रतनजी से श्री बाबा ने तीन रूपये चौदह आने कैसे प्राप्त किये? इस प्रश्न ने सभी लोगोंको आश्चर्य में डाल दिया। अन्त मे दासगणूजी ने पूछा, ''क्या आपके यहाँ कभी कोई साधु-संत आया था?'' तब ज्ञात हुआ कि शिरडी जाने से पूर्व मौलिवी साहब नामक एक फकीर रतनजी से मिलने आये थे। उन मौलिवीसाहब को भोजन के लिए जो सामग्री का सारा प्रबन्ध उन्होंने अपने मुनीम को सौप दिया था। भोजन के लिए जो सामग्री मुनीम खरीद कर लाया था, उसकी सूची भली-भाँति देखने के पश्चात दासगणू जी को इस बात का महान आश्चर्य हुआ कि मौलीवीसाहब को जो भोजन कराया गया था, उसका खर्च ठीक-ठीक तीन रूपये चौदह आने ही हुआ था।

श्री साई महाराज अपने भक्तों का पूरा ध्यान रखते थे। उनका सभी लोगों के हृदय मे वास रहता था। श्री बाबा के भक्त जानते थे कि श्री साई महाराज का हरेक स्थान पर अस्तित्व है। इस घटना से तो यही निष्कर्ष निकलता है की मौलिवीसाहब को कराया गया भोजन श्री साई महाराज को प्राप्त हुआ। श्री बाबाकी कृपासे रतनजी को पुत्र लाभ हुआ। रतनजी की प्रसन्नता का पारावार न रहा और उन्होनें बहुत सारा धन दान-धर्म में व्यवहार अपना आनंद व्यक्त किया।

श्री साई को यदि कोई बात बुरी या अनुचित प्रतीत होती तो वे अपने अत्यन्त प्रिय और निकट के भक्त की भी परवाह न कर उसे भी आडे हाथ लेते थे। दासगणूजी से श्री बाबा को विशेष स्नेह था। एक बार किर्तन करने कि लिए जाते समय बगलबन्दी, शुभ्र अँगरखा, सिर पर लाल पगडी जरी बुटी से कढा उत्तरीय आदि से सुसज्जित हो दासगणूजी श्री बाबा के दर्शनार्थ द्वारकामाई में उपस्थित हुए। उन्हें देख श्री साई व्यंग करते हुए बोल पडे- ''क्यों, दूल्हे की भाँति सजकर कहाँ जा रहे हो?'' दासगणूजी के नम्रतापूर्वक यह कहने पर कि वे कीर्तन करने जा रहे है, श्री बाबा गम्भीरता से बोले- ''कीर्तन करते समय, ईश्वर का गुणवान करते समय एसे ठाट-बाट की क्या आवश्यकता है? हमारी

पुरातन किर्तन-प्रणाली कितनी पवित्र और परोपकारी है। कीर्तनिया का हृदय जब परमेश्वर चिंतन से सदैव संतुष्ट और ओत-प्रोत होगा, तब ही तो वह दूसरों के मन पर उचित संस्कार डाल सकता है। अपने शरीर पर जो ये वस्त्रालंकार है, उन्हें फेक दो और बिल्कुल सरल, शुद्ध तथा पवित्र मन से किर्तन करो।''

श्री साई महाराज के इस परामर्श से दासगणूजी पूर्णतया सहमत हुए। कीमती वस्त्रालंकार, ठाट-बाट आदि सब कुछ अनावश्यक है। यह उन्होंनें अनुभव किया। तीनों लोकों में भ्रमण करते हुए अपनी वाणी की झंकार से कर्ण-प्रिय किर्तन कर भक्तों के लिए परमेश्वर की लीलाओं का निरंतर गुणगान करने वाले नारद मुनि की प्रतिमा उनकी दृष्टि के सामने आ खडी हुई। दासगणूजी ने इसी दिन से केवल धोती तथा शरीर पर उपरना पहने साधे वेश में ही किर्तन करने का दृढ संकल्प लिया।

दासगणूजी की कीर्तन करने की पद्धति इतनी हृदयहारी तथा प्रभावोत्पादक होती थी कि लोग आनंद-विभोर हो झूमने लगते थे। किसी को उनका निरूपण पसन्द था तो कोई उनकी कथाशैली और गीतों पर मोहित होता था। जब वे श्री साई महाराज के आख्यानसुनाते और उनका किर्तन करते, तो और भी रंग जमता था। ठाणा के सुप्रसिद्ध कौपीनेश्वर के मंदिर में जब दासगणूजी का श्री साई महाराज की लीलाओं पर कीर्तन हो रहा था तो चोलकर नामक एक सुशिक्षीत, किंतु निर्धन भक्त आत्मानंद में लीन हो गया। उसने वहीं मन में श्री साईनाथ को देवता-स्वरूप मानते हूए मनौती की कि 'यदि मैं कचहरी की आगामी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और मेरे वेतन में वृद्धि हुई तो मैं श्री बाबा के दर्शनार्थ शिरडी जाऊँगा और आनंद प्रीत्यर्थ सभी उपस्थित लोगों में गन्ने बाटूँगा।'

संयोगवश कहिये या श्री साई महाराज की कृपा कहिये, चोलकर परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और कुछ ही समय पश्चात् उसकी पदोन्नति भी हो गई। अब अपने संकल्प के अनुसार उसके लिए शिरडी जाना आवश्यक हो गया।

पर चोलकर का परिवार बहुत बडा था। इसलिए शिरडी जाने के लिए वह रूपया इकट्ठा करने में बडी कठिनाई अनुभव करने लगा। रोज के खर्चे में कमी करने के लिए उसने चाय में शक्कर डालना बंद कर दिया और फीकी चाय पीनी शुरू की। इस प्रकार कुछ रूपये बचाकर वह शिरडी पहुँचा और अनन्य भाव से श्री साई महाराज के चरणों पर मस्तक रखकर उसने अपनी शक्ति के अनुसार उपस्थित लोगों में गन्ने बाँट कर अपना संकल्प पूरा किया। चौलकर बापूसाहब जोग के साथ श्री बाबा के दर्शनार्थ गया था। जब चोलकर लौटते समय श्री साई महाराज के पास आज्ञा माँगने के लिए पहुँचे तो बापूसाहब की ओर मुडकर श्री बाबा बोले-''ठाणा से आये हुए तुम्हारे इस अतिथि को घर लौटने से पहले खूब शक्कर डालकर बहुत सारी चाय पिलाओ।''

श्री बाबा के ये उद्गार सुनकर चोलकर को महान आश्चर्य हुआ। श्री साई की अद्‌भुत लीला देखकर उसके नयन प्रेमाश्रु से भर आये। उसने पुन: एक बार श्री बाबा के चरणों में अपना मस्तक झुका दिया। बापूसाहब भी श्री बाबा के शब्दों का अर्थ नही समझ सके थे। जब चोलकर ने श्री बाबा के उद्‌गारो का स्पष्टीकरण किया तो उनके आश्चर्य का भी ठिकाणा न रहा। श्री साई महाराज ने चोलकर को बिना शक्कर की चाय पीने की आदत का स्मरण कराया और उसके मन में जो भक्ति-भाव था, उस और भी दृढ किया। हजारो मील दूर रहने वाले एकनिष्ठ भक्ते के प्रत्येक आचरण पर श्री साई कितना ध्यान रखते थे। यह बात चोलकर के उदाहरण से भक्तों को ज्ञात होगी और साई महाराज के चरणों में उनकी निष्ठा और भी दृढ हो जायेगी।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋